!! द्वितीय अध्याय !!

भारत में लेखन कला की प्राचीनता व लेखन सामग्री

- लिपि की उत्पत्ति एवं विकास
- अभिलेख लेखन की प्रमुख लिपियाँ
- उत्कीर्ण अभिलेखों की लेखन सामग्री
- अभिलेखों में प्राप्त त्रुटियाँ
- शिलालेखों हेतु उपयुक्त स्थल
- अन्य सम्बन्धित तथ्य

भारत में लेखन कला की प्राचीनता व लेखन सामग्री

लिपि की उत्पत्ति एवं विकास :-

स्व-मनसुद्भूत विचारों को लिपिबद्ध करने का प्रचलन अनादिकाल से रहा है। यूरोपीय विद्वानों में सर्वप्रथम मैक्स म्युलर ने प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखते समय भारत में लेखनकला की प्राचीनता का अध्ययन किया। पाणिनि मनु याज्ञवल्क्य, कालिदास आदि के ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत में सूत्रकाल (ई.पू. चतुर्थ शताब्दी) में लेखन कला का आरम्भ हुआ। बर्नेल ने भारतीय लिपि की विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए विचार प्रकट किया कि भारत में लेखनकला का आरम्भ ईसा पूर्व पाँचवीं अथवा चौथी शताब्दी में हुआ था। डॉ. जार्ज ब्यूलर ने ब्राह्मी की उत्पत्ति का आधार सेमेटिक लिपि मानते हुए लिखा है कि अनुसंधानों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्राह्मी का विकास ई. पू. 500 के लगभग या हो चुका था। इसलिए भारत में सेमेटिक लिपि के आगमन की वास्तविक तिथि ई. पू. 800 के लगभग रख सकते हैं।[1]

यूरोपीय विद्वानों के विचारों के खण्डन में भारतीय परम्परा में लिपि को ईश्वर-सम्भूत विराट संसार के इहलौकिक कल्याण के लिए ही ब्रह्मा ने लिपि बनाई। यदि वे ऐसा नहीं करते तो सम्पूर्ण विश्व की शुभगति नहीं होती।[2] वास्तव में लिपि ही वाङ्मय को स्थायित्व प्रदान करती है और लिपि के सम्यक् अवग्रहण से ही मनुष्य साहित्य में प्रवेश करता है।

भारत की कलात्मक परम्पराओं में लेखन कला की प्राचीनता के कतिपय प्रमाण प्राप्त हुए है। बादामी में ब्रह्मा की एक मूर्ति मिली है जिसमें ब्रह्मा के एक हाथ में ताड़-पत्र है, और इसमें लिखावट दिखलाई गई है। मथुरा में प्रथम शताब्दी ईसवी की एक मूर्ति की चौकी पर सरस्वती की मूर्ति उत्कीर्ण प्राप्त हुई है। इसमें एक हाथ

---

1. इण्डियन पैलियोग्राफी हिन्दी अनुवाद पृष्ठ-35

2. नाकरिष्यद्यदि ब्रह्मा लिखितं चक्षुरुत्तमम्। तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविष्यच्छुभा गतिः।। - ना.स्मृ. 4-70

में पुस्तक है। भारत में सरस्वती की पूजा विद्या देवी के रूप में की जाती है। देवगढ़ के गुप्तकालीन विष्णु मन्दिर के एक भाग पर 'पुस्तक हस्त विष्णु' की मूर्ति खुदी हुई है। ऐलीफेन्टा गुहा में शिव के हाथ में पुस्तक है। प्राचीन चोलचित्रों में शिव के हाथ में पुस्तक दिखलाई गई है। इन कलात्मक परम्पराओं में लेखन कला की प्राचीनता का पता चलता है।

सिन्धु घाटी में पाए गए लेखों से स्वमेव सिद्ध है कि उस रहस्यमयी लिपि क अन्वेषण वैदिक युग से पूर्व हो चुका था। उस द्रविड़-सभ्यता ने अपने भाषणों के संकेत स्थिर कर लिए थे किन्तु वैदिक वाड्.मय उच्चारण और अनु उच्चारण की परम्परा पर आगे बढ़ता रहा। मन्त्रद्रष्टा ऋषि ऋचा का उच्चारण करते तथा शिष्य उसकी पुनरावृत्ति करते।[1] तब तक लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था। उत्तर वैदिक लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था। उत्तर वैदिक काल में भी लेखन कला के स्पष्ट संकेत नहीं। रामायण-महाभारत काल में यह विज्ञान अवश्य पूर्णता को प्राप्त हो चुका था। राम की मुद्रिका जो हनुमान ने सीता जी को दी थी, रामनामांकित थी और महाभारत के अपौरूषेय भावोद्‌गार को लिपिवद्ध करने हेतु वेदव्यास जी ने आशुलिपिक के रूप में गणेश जी की सेवायें ग्रहण की थी।[2] महर्षि पाणिनि ने भी अष्टाध्यायी में 'लिपि' और 'लिबि' आदि शब्दों का प्रयोग किया है।[3]

लेखन कला की प्राचीनता के सम्बन्ध में साहित्यिक प्रमाण :-

अ- ब्राह्मण साहित्य :-

ब्राह्मण साहित्य के गहन अध्ययन कर विद्वत्मनीषियों ने लेखन कला की प्राचीनता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। 'ब्यूलर' ने धर्मसूत्रों के आधार पर लेखन कला की प्राचीनता के विषय में लिखा है 'प्राचीन धर्मसूत्रों के ध्यानपूर्वक अध्ययन से सिद्ध हो गया है कि 'वाशिष्ठ धर्मसूत्र में स्वामित्व' के प्रमाण के रूप में लेख्य का वर्णन है। इसमें लिखा गया है कि घर एवं खेतों के विषय में विवाद उत्पन्न होने पर न्यायिक निर्णय लेख्य के आधार पर किया जायेगा। यदि

---

1. ऋग्वेद 2-289

2- महाभारत, आदि पर्व 1-112

3. अष्टाध्यायी 3-2-21

पड़ोसियों के प्रमाणों से विवाद उत्पन्न हो एवं यदि विवादग्रस्त लेख्य प्रस्तुत किए गए तो निर्णय वृद्ध मनुष्यों और श्रेणियों के वक्तव्यों के आधार पर होंगे।

कुमारिल भट्ट ने माना है कि वशिष्ठ धर्मसूत्र ऋग्वैदिक सम्प्रदाय का एक मूल धर्मसूत्र है। इसकी रचना मनुसंहिता से पूर्व एवं मानव धर्मसूत्र के बाद में मानते हैं। वाशिष्ठ धर्मसूत्र गौतम धर्मसूत्र से बाद का माना गया है एवं संभवतः उस काल का है जब विशेष विधिशास्त्र विद्यालयों की स्थापना वैदिक विद्यालयों के शिक्षकों की प्रतिस्पर्धा में धार्मिक एवं व्यवहार-विधि पढ़ाने के लिए स्थापित किए गए थे।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर ब्यूलर ने ये माना है कि वशिष्ठ धर्मसूत्र को ऋग्वेद सम्बन्धी उत्तर-भारतीय विद्यार्थियों के लिए ई. पू. शताब्दी में प्रणीत किया गया।

"वेदांगों में पाणिनि के व्याकरण की गणना है। पाणिनि द्वारा 'यवनानी' शब्द का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त अष्टाध्यायी में 'लिपिकर' एवं लिविकर के समस्त पदों का उल्लेख है। कभी-कभी कोशों के प्रमाण के विरूद्ध लोग लिपिकर का अर्थ अभिलेखों का कर्ता कर देते हैं किन्तु इसका अर्थ लेखक है। इन निश्चित प्रमाणों के अतिरिक्त उत्तर वैदिक ग्रन्थों में कतिपय पारिभाषिक शब्द जैसे अक्षर, काण्ड, पटल, ग्रन्थ आदि आए हैं। विद्वानों ने लेखन कला के प्रमाण स्वरूप इसमें उद्धृत किया है। लिखित अक्षरों और हस्तलिखित ग्रन्थों के सम्बन्ध में अन्य सामान्य तर्क दिए गए हैं, जैसे वैदिक सभ्यता काफी विकसित थी विशेषतः व्यापार के क्षेत्र में उन्होंने काफी उन्नति की थी, वैदिक ग्रन्थों में धन के लेन-देन का उल्लेख है, ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य में है वैदिक ग्रन्थों के संग्रह व उनके पाठक्रम आदि सुव्यवस्थित हैं। इसी प्रकार वेदांगों में व्याकरण ध्वनिशास्त्र तथा कोशकला की दृष्टि से भी शोध हुआ है, उनके आधार पर विद्वान लेखन कला की प्राचीनता का प्रमाण देते हैं। इन तर्कों में कितना बल है इस बारे में विद्वानों में काफी मतभेद है।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट है कि ब्यूलर ने लेखन कला की प्राचीनता को स्वीकार करने के साथ यह भी माना कि वैदिक युग में मौखिक ज्ञान अध्ययन का मुख्य आधार था।

'ऋग्वेद में राजा सावर्णि द्वारा एक हजार गायें दान में देने का वर्णन है जिनके कानों पर आठ का अंक अंकित था। यजुर्वेद में पुरुषमेध के सम्बन्ध में गणक का

उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण में दिन और रात के सूक्ष्म विभाजन का उल्लेख है।[1]

उपर्युक्त तथ्यों को हृदयागम करने के पश्चात् अधोलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं

- रामायण व महाभारत में लिख, लेख, लेखक आदि शब्दों के आने से यह स्पष्ट है कि इन महाकाव्यों के समय लेखनकला का पर्याप्त विकास हो चुका था। इन महाकाव्यों की समयवधि ई.पू. चतुर्थ शताब्दी के लगभग माना गया है, अस्तु यह स्पष्ट है कि ई.पू. चतुर्थ शताब्दी तक लिपि का विकास हो चुका था।

- अर्थशास्त्र में लिपि[2] तथा लेखक[3] शब्दों का प्रयोग प्राप्त है अस्तु स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र के समय भी लेखन कला पर्याप्त विकसित हो चुकी थी।

- वाशिष्ठ धर्मसूत्र, विष्णु धर्मसूत्र एवं गौतम धर्मसूत्र में भी लेखन कला की प्राचीनता के प्रमाण समुप्लब्ध है। सूत्रों की समयावधि द्वितीय से अष्टम् शताब्दी ई. पू. मानी जाती है, अस्तु इस अवधि तक लेखनी का पर्याप्त विकास हो चुका था, यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

वैदिक साहित्य में अनेक ऐसे प्रमाण समुपलब्ध है जैसे ऋग्वेद में छन्दों के नाम सम्बन्धी आन्तरिक प्रसंग है जैसे गायत्री अनुष्टुप, वृहती, विराज, तिष्ट्भ जगाति आदि। "वाजसनेयी संहिता में और अधिक छन्द जैसे पंक्ति, द्विपद, त्रिपद, चतुष्पद, षटपद् का वर्णन है। अथर्ववेद' में ग्यारह छन्दों का उल्लेख है।[4]

अस्तु यह स्पष्ट है कि वेदांग साहित्य में लेखन कला की प्राचीनता के पर्याप्त साक्ष्य प्राप्त हैं।

'बौद्ध साहित्य' में भी लेखनकला की प्राचीनता के सन्दर्भ में अनेक तथ्य अवलोक्य हैं। बौद्ध साहित्य के ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर यह स्पष्ट हुआ है कि प्राचीनकाल में लिखना सिखाने के लिए लिपिशालायें थीं। बौद्ध साहित्य के प्रमुख ग्रन्थ त्रिपिट्टक में भी लेखन कला की प्राचीनता के साक्ष्य समुपलब्ध हैं। इसके

---

1. भारत के प्राचीन अभिलेख पृष्ठ 7

2. अर्थशास्त्र 1-2-44 पृष्ठ-18

3. अर्थशास्त्र 2-26-10-2 पृष्ठ-143

4. प्राचीन भारतीय अभिलेख- पृष्ठ-6

अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थ ललित विस्तार में चौसठ लिपियों[1] का उल्लेख है। इसमें सिद्धार्थ का लिपिशाला में एवं उनके गुरू विश्वामित्र द्वारा लाल चन्दन की लकडी के फलक पर सोने की कलम से लिखना सिखाने का वर्णन है। उपर्युक्त प्रमाणों के अतिरिक्त पालि धर्मग्रन्थों में कतिपय प्राविधिक शब्दों का उल्लेख है, जिनसे लेखन कला की प्राचीनता सुस्पष्ट है जैसे 'छिन्द', 'लिख' 'लेखक', 'लेखा' 'अक्सर' आदि।

उपर्युक्त तथ्यों के सिंहावलोकन से भी यह तथ्य स्पष्ट है कि बौद्ध साहित्य के आगार में लेखनी की प्राचीनता कों सिद्ध करने वाले अनेक तथ्य अनुस्यूत हैं।

''जैन साहित्यि'' के अध्ययन से भी यह स्पष्ट होता है कि लेखन कला अत्यन्त प्राचीन समय से अस्तित्व में है। जैन आगमों में हमें ऐसे साक्ष्य सहज ही समुपलब्ध हैं। जैन ग्रन्थ पण्णावणा सूत्र, समवायांग सूत्र एवं भगवती सूत्र में विभिन्न लिपियों का वर्णन है। पण्णातणा सूत्र समवायांग सूत्र[2] में अट्ठारह लिपियों का वर्णन हैं। जैन ग्रन्थों की सूची में 'यवणालिया' अथवा 'यवणाणिया' का उल्लेख है, इसी लिपि को पाणिनि ने 'यवनानी' संज्ञा से अभिहित किया है।

उपर्युक्त तथ्यों के गहन अन्वेक्षण से स्पष्ट है कि जैन साहित्य में भी लेखन कला की प्राचीनता सम्बन्धी तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं।

अतः स्पष्ट है कि लिपि अत्यन्त प्राचीन समय से प्रचलन में है जो उत्तरोत्तर विशिष्टता को प्राप्त करते हुए आज नवीन माध्यमों से सुसम्पन्न होकर समस्त संसार का अभिन्न अंग बन चुकी है।

अभिलेख लेखन की प्रमुख लिपियाँ

प्राचीन परम्पराओं, विदेशियों के वर्णनों, बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण साहित्यिक प्रमाणों तथा पुरालिपिक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि भारत में लेखन कला का आरम्भ सिन्धु घाटी सभ्यता के पतन के पश्चात् लेखन कला का विकास किस रूप में हुआ इस विषय में कुछ ज्ञात नहीं है, परन्तु इतना अवश्य है कि लेखन कला लुप्त नहीं हुई थी। ललित विस्तार में 64 लिपियों का उल्लेख किया गया है जिसमें सर्वप्रथम

---

1. ललित विस्तार- पृष्ठ-88 (मिथिला संस्करण)

2. प्राचीन लिपिमाला (ओझा) पृष्ठ-17

'ब्राह्मी लिपि' को स्थान दिया गया है। जैन ग्रन्थ 'समवायांग ब्राह्मी का उल्लेख है। 'चीनी विश्वकोष' फन-वन-सु-लिन ललित विस्तार के आधार पर लिपियों की सूची है जिसमें ब्राह्मी को प्रथम स्थान प्रदान किया गया है। अतः स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में ब्राह्मी लिपि ही सर्वप्रमुख लिपि थी।

अभिलेखों के उत्कीर्णन हेतु भी ब्राह्मी लिपि का ही प्रयोग किया गया है। अपवादस्वरूप कतिपय स्थलों पर 'खरोष्ठी' लिपि में भी अभिलेखों को उत्कीर्ण किया गया है तथापि प्रायः सभी लेख ब्राह्मी लिपि में ही उत्कीर्ण है। ब्राह्मी लिपि ही शुद्ध भारतीय लिपि मानी जाती है। अतः ब्राह्मी को ही अभिलेख-लेखन की लिपि के रूप में स्वीकार किया गया है।

ब्राह्मी लिपि बायीं से दायीं ओर लिखि जाती है। "ब्राह्मी तु भारती, भाषा, गीर्वाग्वाणी सरस्वती[1] कहकर अमरकोशकार अमरसिंह ने तो इसे स्वयं भाषा या सरस्वती का पर्याय माना है। प्राचीनकाल से ही यह लिपि उत्तरी तथा दक्षिणी दो रूपों में प्राप्त हुई है। उत्तरी ब्राह्मी' के उदाहरण स्वरूप समुद्रगुप्त का 'प्रयाग प्रशस्ति लेख[2] चन्द्रगुप्त का उदयागिरि लेख[3] धानाइदह ताम्रपत्र[4] हर्ष का बाँसखेड़ा ताम्रपत्र[5] आदि हैं। इसी प्रकार दक्षिणी ब्राह्मी के दृष्टान्तरूप बन्धवर्मन का मन्दसौर लेख[6] स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ लेख[7] तथा पेनुकोण्ड लेख[8] आदि है।

1- अमरकोष 1-6-1

2- कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकैरम -भाग-3 संख्या-1

3- कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकैरम -भाग-3 संख्या-3

4- हिस्टोरिकल लिटरेरी इन्सक्रिप्शन्स, पृष्ठ-82

5- हिस्टोरिकल लिटरेरी इन्सक्रिप्शन्स, पृष्ठ-145-147

6- कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकैरम -भाग-3 संख्या-18

7- कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकैरम -भाग-3 संख्या-14

8. सिलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स पृष्ठ-456-457

उत्कीर्ण अभिलेखों की लेखन सामग्री

अ- अभिलेख लेखन की आधारभूत सामग्री :-

अभिलेखों का उत्कीर्णन प्रायः ऐसी वस्तु पर किया जाता है जो अपेक्षाकृत स्थायी हो। 'अभिलेख' का शाब्दिक अर्थ ही है कोई भी लेख जो किसी वस्तु पर उत्कीर्ण हो। अस्तु जो अभिलेख अद्यतन प्राप्त हुए हैं वह काष्ठ, बर्तन, हाथी दाँत, ईंट, स्तम्भ तथा किसी न किसी धातु पर उत्कीर्ण हैं। कागज ताड़पत्र, भोजपत्र, रेशमी कपड़ा, रूई का कपड़ा, चमड़ा आदि अस्थायी वस्तुओं पर उत्कीर्ण अभिलेख विश्लेषणीय अभिलेखों की कोटि में रख सकते हैं। तथापि समस्त अभिलेख लेखन की सामग्री यहाँ विचारणीय है अस्तु उपर्युक्त साधनों को आधारभूत सामग्री के रूप में निम्नवत विश्लेषण किया जा सकता है-

क. अस्थायी अभिलेख लेखन-सामग्री :-

1. ताड़-पत्र-

प्राचीन समय में कविगण अपनी निर्मिति का आधार प्रायः ताड़-पत्रों को बनाते थे। विद्वानों का मन्तव्य है कि सर्वप्रथम ताड़पत्र को सुखा दिया जाता था पुनश्च पानी में उबालने या भिगोने के बाद सुखाकर पत्थर या शंख से घोटकर चिकना बना दिया जाता था एवं निश्चित आकार में काट लिया जाता था। ताड़पत्र की लम्बाई एक से तीन फुट और चौड़ाई चार इंच से सवा फुट तक होती थी।

"उत्तरी भारत में ताड़पत्रों पर रोशनाई से परन्तु दक्षिण भारत में स्टाइलस से अक्षर लिखे जाते थे फिर कालिख अथवा लकड़ी के कोयले से उन्हें काला कर दिया जाता था।"[1]

डॉ. डी.सी. सरकार ने माना है कि पाषाण अथवा ताम्रपत्र पर लेख उत्कीर्ण करने से पूर्व मूल-लेख ताड़पत्र पर तैयार किया जाता था।

'ग्रन्थों की रचना के लिए ताड़पत्रों को एक ही आकार में काट लिया जाता था एवं पत्रों के ऊपर एवं नीचे उसी के आकार का काष्ठ फलक रख दिया जाता था। तदुपरान्त पत्रों के बीच में एक छिद्र कर दिया जाता था।'[2]

1- प्राचीन भारतीय अभिलेख- पृष्ठ-13

2. प्राचीन भारतीय अभिलेख- पृष्ठ-13-14

प्राचीन ताड़पत्रों पर ग्रन्थों की रचना की जाती थी ऐसे साक्ष्य प्राप्त होते हैं यथा 'मध्य एशिया' के तुरफान नामक स्थान पर हस्तलिखित पोथियाँ प्राप्त हुई हैं जिसमें अश्वघोष के 'सारिपुत्र प्रकरण' के कतिपय अंश है। अनेक बौद्ध-आगमों की रचना भी ताड़-पत्रों पर हुई हैं, ऐसे दृष्टान्त भी समुपलब्ध हैं। बंगाल, राजस्थान, गुजरात आदि स्थानों पर भी ताड़पत्रों पर लिखित कतिपय पुस्तकों के दृष्टान्त प्राप्त हुए हैं। अस्तु यह निश्चितरूपेण कहा जा सकता है कि प्राचीनकाल में लेखन सामग्री के रूप में ताड़ पत्रों का प्रयोग व्यापक रूप में होता था।

2. भूर्जपत्र :-

'भूर्ग' नामक वृक्ष की छाल से भूर्जपत्र का निर्माण होता है। प्रायः यह माना जाता है कि सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व भूर्जपत्र का प्रयोग लेखन सामग्री के रूप में किया जाता था। ये पत्र प्रायः एक गज लम्बे होते थे। इन पर चिकनाईयुक्त पदार्थ लगाकर इन्हें चिकना किया जाता था। तत्पश्चात् लेखन सामग्री के रूप में इसका प्रयोग किया जाता था।

संस्कृत में बौद्ध कृति संयुक्तागम सूत्र की अनुलिपि (चौथी शती ईसवी) बोअर हस्तलिखित पोथी अनुलिपि (आठवीं शती ईसवी) आदि भूर्जपत्र पर रचित है। अस्तु यह स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में भूर्जपत्र भी लेखन का प्रमुख आधार था।

3. वस्त्र :-

प्राचीनकाल में लेखन सामग्री के रूप में वस्त्रों का प्रयोग भी प्रचलन में था। अधिकांशतः राजाज्ञाऐं वस्त्रों पर लिखवाकर साधारण जन तक प्रेषित की जाती थी। व्यापारीगण कपड़े के बहियों का प्रयोग करते थे जिसे कपड़े को सुखाकर फिर उसमें इमली का लेप लगाकर तैयार किया जाता था। तत्पश्चात् उसे कृष्णवर्णी बनाकर उस पर खड़िया या पेन्सिल से लिखा जाता था। 'श्रंगेरी मठ'[1] में इस प्रकार का वाहिया सुरक्षित है। इन्हिलवाड़ पाटन के जैन पुस्तकालय में 13 इंच लम्बे एवं 5 इंच चौड़े 93 वस्त्रों के टुकड़े पर लिखित श्रीप्रभसूरि कृत धर्मविधि अद्यतन समुपलब्ध है।

1- प्राचीन भारतीय अभिलेख- पृष्ठ-15

लेखन सामग्री के रूप में रूई के वस्त्रों का प्रयोग भी किया जाता था। रूई के वस्त्रों पर माड़ का लेप लगाकर उसे शंख आदि से चिकना बनाकर उस पर लिखा जाता था। 'राजस्थान में भड़ली के ज्योतिष कपड़े के टुकड़ों पर पंचांग तैयार करते थे।[1] जैसलमेर के वृहज्ज्ञान कोष नामक पुस्तक भण्डार में रेशम की एक पट्टी पर लिखी जैनसूत्रों की एक सूची मिली थी। इस पर रोशनाई से लिखा गया था।[2] अस्तु स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीनकाल में वस्त्रों का लेखन सामग्री के रूप में प्रयोग किया जाता था। नृपगण से लेकर साधारण जन तक सभी अपने-अपने ढंग से उसका प्रयोग करते थे।

4. कागज :-

लिखने के लिए कागज का प्रयोग प्राचीनकाल से अर्वाचीन काल तक हो रहा है। मध्य एशिया के 'काशगर' एवं 'कुगीर' नामक स्थान पर सर्वप्रथम कागज की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। यह गुप्तकालीन लिपि में है। इसका समय लगभग पाँचवीं शताब्दी ईसवी है। इसके अतिरिक्त एम.स्टीन महोदय ने 1089 ई. में रचित शतपथ ब्राह्मण की एक कश्मीरी हस्तलिखित पुस्तक का उल्लेख किया है।

5. काष्ठ :-

काष्ठ भी अभिलेख लेखन का प्रमुख आधार था। प्रायः बौद्ध ग्रन्थों को काष्ठफलक पर उत्कीर्ण किए जाने के अनेक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। बौद्ध भिक्षुओं के निक्रमन पत्र बाँस के फलकों, जिन्हें शलाका कहते थे, के होते थे।[3] कात्यायन एवं दण्डी ने भी काष्ठफलक का उल्लेख किया है जिस पर 'पाण्डुलेख' से लिखा जाता है। व्यापारिक आदान-प्रदान का विवरण भी काष्ठफलकों पर उत्कीर्ण किया जाता था। इसके अतिरिक्त राजाज्ञायें भी चिकने काष्ठफलकों पर अंकित कर सर्वसाधारण के लिए रखी जाती थी। ''विन्टरनित्ज' के अनुसार असम की काष्ठफलकों पर लिखित पोथी बेदेलियन पुस्तकालय में सुरक्षित है।[4] किरारी

1- प्राचीन भारतीय अभिलेख- पृष्ठ-15

2- प्राचीन भारतीय अभिलेख- पृष्ठ-16

3- प्राचीन भारतीय अभिलेख- पृष्ठ-16

4- प्राचीन भारतीय अभिलेख- पृष्ठ-16

छत्तीसगढ़ (म.प्र.) में ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण एक स्तम्भ लेख[6] प्राप्त हुआ है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीनभारत में काष्ठफलकों पर अभिलेख उत्कीर्ण करने की परम्परा थी।

1. प्रस्तरखण्ड :-

अभिलेखों को स्थायित्व प्रदान करने हेतु उनको प्रस्तर खण्डों पर उत्कीर्ण करने की परम्परा थी। भट्टिप्रोलु के स्तूप से स्फटिक पर उत्कीर्ण एक लेख प्राप्त हुआ है।[1] प्रायः ग्रेनाइट पत्थर[2] सैकत शिला[3] तथा अन्यान्य सहज सुप्राप्य पत्थर ही लेखों को उत्कीर्ण करने के लिए प्रयोग में लाये जाते थे। प्रस्तर लेखों में चट्टानें, स्तम्भ, यूप, शिलाफलक, दीपमात्र, प्रवेशद्वार, दीवार, मूर्तियाँ, लिंग पंचमूल प्रणाली कड़ियां मन्दिरों के घेरे आदि आ जाते हैं। इसी वर्ग में उदयगिरि, बराबर, नागार्जुनी, अजन्ता-गुहालेख भी माने जायेंगे।

भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में शिला स्तम्भ पाये गए हैं। जिन पर तत्कालीन राजाओं से सम्बन्धित वृत्तान्त सामाजिक-आर्थिक विवरण अथवा साहित्यिक कृतियों सम्बन्धी तथा उत्कीर्ण है। शिलालेखन हेतु प्रायः एक प्रस्तर खण्ड अथवा शिलाखण्ड का उपयोग किया जाता था किसी विस्तृत वृतान्त अथवा ग्रन्थ के उत्कीर्णन हेतु दो शिलाखण्डों का प्रयोग कतिपय स्थलों पर प्राप्त होता है। शिलाओं पर अनेक सम्राटों के अभिलेख उत्कीर्ण हैं। अभिलेख उत्कीर्ण करने के लिए पहाड़ियों के किसी प्रमुख भाग को काम में लाया जाता था।

शिलाखण्डों पर प्रशस्ति लिखते समय उन्हें काट-छाँटकर सुन्दर आकृति प्रदान की जाती थी तत्पश्चात् उस पर विषय-सामग्री खड़िया अथवा किसी अन्य लेखनी से लिख दी जाती थी। उसी पर किसी धारदार अस्त्र से विषय सामग्री उत्कीर्ण कर दी जाती थी। कुम्भलगढ़ के कम्भस्वामिन अथवा भाभादेव मन्दिर पर राणा कुम्भा की प्रशस्ति पाँच शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण है। मेवाड़ के राणा राजसिंह की राज प्रशस्ति राजसमुद्र पर चौबीस शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण है। परमार भोज की

1- उत्कीर्ण लेख-पृष्ठ-13

2- प्राचीन लिपिमाला (ओझा) पृष्ठ-15

3- पनमलई लेख, एपिग्राफिया ऑफ इण्डिका-भाग-19 पृष्ठ-109-115

कविता कूर्मस्टक एवं मदन की परिजातमंजरी (अथवा विजयश्री नाटिका) अनेक शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण है। चाहमान राजा चतुर्थ विग्रहराज की हरकेलि नाटक एवं उसके दरबारी कवि सोमेश्वर द्वारा लिखित ललित विग्रहराज नाटक कई शिलाखण्डों पर लिखित है। विजोलियाँ में दिगम्बर जैनों की कृति उन्नतिशिखर पुराण पहाड़ी के एक समतल शिलाखण्ड पर उत्कीर्ण है।[1]

स्मृति स्तम्भ लेख भी प्राप्त हुए हैं, जो वीरों अथवा सतियों के स्मृति में लगाये जाते थे। इन पर भी अभिलेख उत्कीर्ण किए जाते थे। कतिपय धार्मिक स्तम्भ लेख भी प्राप्त हुए हैं जिन्हें 'यूप' की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार के स्तम्भ बड़वा में मिले हैं जो कि कोटा के संग्राहालय में सुरक्षित हैं।

प्रतिमाओं अथवा मूर्तियों के पृष्ठ भाग पर भी अभिलेखों के उत्कीर्णन के अनेकानेक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं यथा 'एरण' की बराह मूर्ति पर हूण राजा तोरमाण की प्रशस्ति उत्कीर्ण है।[2]

पात्रों के ढक्कन एवं मंजूषाओं पर भी लेख उत्कीर्ण किए जाते थे यथा-वीपरवा का पात्र-लेख।[3]

एतदतिरिक्त पश्चिमीघाट की गुहाओं में सर्वाधिक लेख उत्कीर्ण किए गए थे।

2. ईंट मृत्पात्र तथा मृण्मुद्रायें :-

ईंट तथा मिट्टी से निर्मित पात्रों व मुद्राओं पर भी उत्कीर्ण अभिलेखों की प्राप्ति पुरातात्विकों को हुई है यथा गोपालापुर की ईंटें[4] कठियावाड़ में प्राप्त मृत्पात्र खण्ड[5] गुप्त साम्राज्ञी ध्रुवस्वामिनी की मृण्मुद्रा[6] आदि। इसके अतिरिक्त मथुरा के संग्रहालय लेख उत्कीर्णित ईंटें सुरक्षित हैं।

1- प्राचीन भारतीय अभिलेख (मजूमदार) पृष्ठ-17

2- प्राचीन भारतीय अभिलेख (मजूमदार) पृष्ठ-18

3- प्राचीन भारतीय अभिलेख (मजूमदार) पृष्ठ-18

4- एपिग्राफिया इण्डिका-पृष्ठ-18-19

5. आर्केलॉजिकल सर्वे ऑफ (एनुअल रिपोट) 1903-04 पृष्ठ-107

6. इण्डिया ऐण्टिक्वेरी भाग-14 पृष्ठ-75

3. सोना-चाँदी :-

प्राचीनकाल में सोने-चाँदी पर स्मृतिस्वरूप अभिलेख-उत्कीर्णन होता था। इसके दृष्टान्त हमें साहित्यिक रचनाओं में प्राप्त होते हैं। यथा बाल्मीकि रामायण में संकटमोचन भगवान हनुमान जब लंका में सीता की खोज हेतु जाते हैं तब उन्हें अशोक वाटिका में रामनामांकित अंगूठी प्रदान करते हैं-

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामांकित चेदं पश्य देव्यं गुलीयकम्।।

कालिदास विरचित 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में दुष्यन्त स्वनामांकित' अंगूठी शकुन्तला को देते हैं जिसमें अंकित था-महाराजाधिराज श्री दुष्यन्तस्य। मुद्राराक्षस में भी नामांकित अंगूठी का उल्लेख है।[2] उपर्युक्त साहित्यिक दृष्टान्त इस तथ्य की स्वमेव पुष्टि करते हैं कि प्राचीनकाल में स्वर्णादि से निर्मित आभूषणों आदि पर भी अभिलेख उत्कीर्णन होता था। तक्षशिला के एक स्तूप में स्वर्ण पत्र मिला है जिस पर खरोष्ठी लिपि में लेख उत्कीर्ण है।[3] बौद्ध साहित्य में हमें चाँदी पर भी अभिलेख उत्कीर्णन के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। तक्षशिला में 6 1/4 इंच लम्बा एवं 1 3/8 इंच चौड़ा चाँदी का पत्र प्राप्त हुआ है।[4] चम्पा से रजत पट[5] तथा रजत घट[6] की प्राप्ति हुई है जिस पर अभिलेख उत्कीर्ण हैं। कतिपय जैन मन्दिरों में चाँदी के फलकों पर उत्कीर्ण मंत्र प्राप्त हुए हैं। चाँदी के पात्रों पर नाम उत्कीर्णित करने की प्रणाली अर्वाचीन काल तक प्रचलन में है।

धामधा में 24 मोटे स्वर्णपत्र जो एक तांबे के छल्ले द्वारा नत्थी किए हुए थे प्राप्त हुए हैं।[7]

---

1. *उत्कीर्णनामद्येय राजमंगुलीयकम्'- अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक-6 पृष्ठ-138 (वाले संस्करण)*
2. *मुद्रा राक्षस, अंक -1*
3. *आर्कलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग-2 पृष्ठ-130*
4. *जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसायटी (1914) पृष्ठ-975-976*
5. *La tho silver plate inscription चम्पा इ.सं.-129 पृ. 227*
6. *La tho silver plate inscription चम्पा इ.सं.-130 पृ. 227*
7. *प्राचीन भारतीय अभिलेख (मजूमदार) पृष्ठ-19*

3. टिन-कांसा-पीतल-लोहा

टिन-कांसा-पीतल तथा लोहा ये धातुएँ भी अभिलेख उत्कीर्णन का प्रमुख आधार थीं। टिन[1] तथा कांसे[2] के घंटों पर भी लेख उत्कीर्ण किए जाते थे। पीतल के पट्ट पर लेख उत्कीर्ण कर उन्हें मन्दिर के द्वार पर लगा दिया जाता था।[3] असम में एक बन्दूक प्राप्त हुई है जिस पर (फारसी और संस्कृत) दो लेख अंकित हैं।[4] लेखन कार्य हेतु प्रयुक्त पीतल का उदाहरण तिब्बती लेख वाली बुद्धमूर्ति है।[5] पीतल और लोहे का संयुक्त उदाहरण बाड़ाहाट्ट (उत्तरकाशी) का त्रिशूल लेख है।[6]

कांसे की मूर्तियों की चौकी एवं पीठ पर उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुए हैं। मनिकियल से कांसे की एक मंजूषा मिली है जिस पर लेख खुदा हुआ है।[7]

लौह-स्तम्भों पर लेख उत्कीर्ण किए जाने के अनेक लौह-लेख का सर्वोत्कृष्ट रूप चन्द्र (चन्द्राह्नेन) का मेहरौली स्तम्भ लेख है।[8] यह सम्भवतः द्वितीय चन्द्रगुप्त का लेख है।

माउन्टआबू के अचलेश्वर मन्दिर के त्रिशूल पर फाल्गुन सुदी 15, विक्रम संवत् 1468 का लेख उत्कीर्ण है।[9] गोपेश्वर का त्रिशूल लेख भी लौह-वर्ग के अन्तर्गत है।[10]

---

1. इण्डियन पौलियोग्राफी पृष्ठ-83

2. प्राचीन लिपिमाला (ओझा) पृष्ठ-154

3. प्राचीन भारतीय अभिलेख पृष्ठ-20

4. जर्नल एण्ड प्रोसीडिंग्जए, एशियाटिक सोसायटी बंगाल न्यू सीरीज, भाग-5 (1909) पृष्ठ-465

5. उ.या.द. पृष्ठ- 522-523

6. गढ़वाल (राहुल) पृष्ठ 384

7. प्राचीन भारतीय अभिलेख पृष्ठ-19

8. कार्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकैरम-भाग-3 सं.-32

9. प्राचीन भारतीय अभिलेख (मजूमदार) पृष्ठ-19

10. उ.या.द. पृष्ठ-499-500

4. ताम्र :-

धातुओं में लेखन सामग्री के रूप में तांबे का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। प्राचीनकाल में राजाज्ञायें प्रायः ताम्रपत्रों को शासन-पत्र की संज्ञा दी जाती थी। विद्वानों को सतत् ग्रामदान करने वाले भोज ने इतने शासन पत्र उद्घोषित किए थे कि उसके राज्य में तांबे का अभाव हो गया था-

"अस्य श्री भोजराजस्य इयनेव सुदुर्लभम्।
शत्रूणां श्रृंखलैर्लोहं ताम्रं शासन-पत्रकैः।।"

भोजप्रबन्ध श्लोक-162

तिरूपति में ऐसे ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं जिन पर साहित्यिक कृतियाँ उत्कीर्ण हैं। कारागर से प्राप्त ताम्रपत्रों के फोटोग्राफ से स्पष्ट है कि इन पर गुरूमुखी एवं नागरी लिपि में वस्तुओं की सूची है।[1] ताड़पत्र या भोजपत्र के नमूनों के आधार पर कारीगर ताम्रपत्र तैयार करते थे।

नमूना यदि ताड़ पत्र का होता था तो ताम्रपत्र लम्बा और पतला होता था और यदि भोजपत्र का होता था तो ताम्रपत्र बड़ा व वर्गाकार होता था। पट्ट तैयार करने के पश्चात् सर्वप्रथम इस ऊपर की ओर अथवा बायीं ओर राजमुद्रा लगायी जाती थी। जिन ताम्रपत्रों पर ऊपर की ओर राजमुद्रा लगायी जाती थी उन पर चौड़ाई एवं जिन पर बायीं ओर लगाई जाती थी उन पर लम्बाई में लेख उत्कीर्ण किए जाते थे।[2] ताम्रपत्रों को छल्ले से एक-दूसरे से सम्पृक्त किया जाता था। प्राय ऊपर की ओर अथवा बायीं ओर एक अथवा दो छल्लों से ताम्रपत्र जुड़े होते थे। इस प्रकार अनेक ताम्रपत्र अथवा ताम्रशासन एक साथ बंधे रहते थे। इन्हें खोलकर पढ़ा जा सकता था। अक्षर टाँकी से उत्कीर्ण किए जाते थे तथा पत्रों के किनारे का भाग प्रायः उठा हुआ होता था।

ताम्र पर उत्कीर्ण शासन अनेक संज्ञाओं से अभिहित किए जाते हैं तथा ताम्रपत्र, ताम्रपर्ण, ताम्रशासन, ताम्रपट्टिका, ताम्रपटक, पट्टिका, पट्ट शासन आदि।

---

1. प्राचीन भारतीय अभिलेख (मजूमदार) पृष्ठ-18-19

2. प्राचीन भारतीय अभिलेख (मजूमदार) पृष्ठ-19

पंचतन्त्र में अपने पुत्रों को अर्थशास्त्र की शिक्षा देने हेतु राजा अमरशक्ति विष्णु शर्मा से कहते हैं- तदा त्वां शासन शतेन् योजयिष्यामि।[1] यहाँ इसका अर्थ है शत संख्यक-ग्रामसम्पद्दान पत्रेण।

इसके अतिरिक्त कतिपय चित्रार्पित लेख भी सुलभ हुए हैं। अजन्ता की गुफाओं में ऐसे रंगीन लेख प्राप्त हुए हैं।[2]

अभिलेख-लेखन की माध्यमभूत सामग्री :-

अभिलेखों को उत्कीर्णित करने से पूर्व उन्हें लिखा जाता था। इसके लिए मसि3, वर्णक[4], वर्णिका[5], तूलि या शलाका[6] और टंक[7] आदि वस्तुओं का उपयोग किया जाता था। टंक को पाषाण-दारण[8] और खनित्र[9] की संज्ञा भी दी गयी है।

लकड़ी का कोयला, पानी, गोंद, शक्कर आदि मिलाकर मसि तैयार की जाती थी। दवात के लिए कोषों में मेलानंदा, मेघांधु, मेलाधुका और मसिमणि तथा पुराणों में मसिपात्र, मसिभाड़, मसि-कूपिका शब्द का प्रयोग हुआ है।

नियर्कस एवं कर्टियस के वर्णन से ज्ञात होता है कि चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में स्याही का प्रयोग होता था। अंधेर के धातु कलश पर स्याही से लिखने का सबसे प्राचीन नमूना मिला है। जैन ग्रन्थों में रंगीन स्याही का प्रयोग किया जाता था। रक्त, सिंदूर और हिंगुल का प्रयोग भी अभिलेख-लेखन हेतु किया जाता था।

---

1. पंचतन्त्र- पृष्ठ-5

2. इन्सक्रिप्शन्स ऑफ द केव टेम्बल ऑफ वैस्टर्न इण्डिया- पृष्ठ-80-88

3. अमरकोश 3-5-10 (चौखम्बा)

4. इण्डियन पैलियोग्राफी (पाण्डेय) पृष्ठ-86

5. अमरकोश 3/5/38 की टिप्पणी

6. तूलिका एवं शलाका इ. अमरकोश 3/3/205 (81)

7. मृच्छकटिकम् 1/20

8. टंक पाषाणदारणः - अमरकोश 2/10/34

9. खनित्रे टंकनेऽस्त्रियाम् - मोदिनी 1/24

'लिखने की उपकरणिका' को लेखनी कहा गया है।[1] लेखनी हेतु पेन्सिल व लकड़ी आदि का प्रयोग किया जाता था। रामायण एवं महाभारत में लेखनी के रूप में लकड़ी का प्रयोग किये जाने का उल्लेख है। सरकंडे अथवा नरकट की कलम को कैलागम कहते हैं। इसे इषीका अथवा इंषिका भी कहा गया है।[2]

लेखक :-

अभिलेखों का लेखक प्रायः कोई विद्वान कवि अथवा राजनीतिविद् होता था। 'कौटिल्य' के अनुसार लेखक की प्राथमिक योग्यता यह थी कि वह सुन्दर अक्षरों वाला आशुलिपिक और लेखनवाचन समर्थ व्यक्ति हो।[3] प्रायः दानलेखों का लेखक अमाप्य ही होता था।[4] अथवा अमाव्य के गुणों से सम्पन्न अन्य कोई व्यक्ति।

इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत लेखों के सन्दर्भ में प्रायः समाज का कोई प्रकृष्ट प्रज्ञा सम्पन्न व्यक्ति भी लेखक हो सकता था।

शिल्पी :-

लेखक का कार्य लेख को प्रस्तर धातु या अन्य आधार भूत लेखन सामग्री पर धातुराग[5] या मसि[6] से लिखना था, फिर शिल्पी उस पर तदवत् टंक से अक्षर उत्कीर्ण करता था। शिल्पी को शिलाकूट की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता था। शिल्पिन को सूत्रधार भी कहा जाता था। अभिलेखों के उत्कीर्णन का कार्य प्रातः सौवार्णिक[7] अथवा अपस्कर[8] अथवा लेखा कार्यालय के कर्मचारी अक्षशालिन्[9] करते थे।

---

1. *प्राचीन भारतीय अभिलेख (मजूमदार) पृष्ठ-20*
2. *प्राचीन भारतीय अभिलेख (मजूमदार) पृष्ठ-20*
3. *अर्थशास्त्र 2/10/2 (चौखम्बा)*
4. *अमात्य अर्जनदत्तेन लिखित-एपिग्राफिया इण्डिका भाग-12 पृष्ठ-3*
5. *त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातु रागैः शिलायां - उत्तरमेद्य, श्लोक-42 (चौखम्बा)*
6. *एपिग्राफिया इण्डिका भाग-18, पृष्ठ-19*
7. *एपिग्राफिया इण्डिका भाग-13 पृष्ठ-116*
8. *एपिग्राफिया इण्डिका भाग-4 पृष्ठ-170*
9. *एपिग्राफिया इण्डिका भाग-13 पृष्ठ-215*

मुद्रांकन-अधिकारी :-

लेखों के उत्कीर्ण होने पश्चात् प्रायः दानलेखों को मुद्रांकित करने प्राविधान था। लेखों को प्रामाणिक बनाने हेतु यह आवश्यक था।[1] धातु पिण्ड को पिघलाकर उसे ठप्पे की भांति दान लेखों पर अंकित किया जाता था। मुद्रा पर राजा तथा राज्य का नाम प्रायः अंकित होता था। धातुपिण्ड को तपाने का कार्य अन्य कर्मचारी करता था तथा उसे दानलेखों पर अंकित करने का कार्य अन्य कर्मचारी को सौंपा जाता था। यथा तापितं पुस्तपाल जयदासेन[2] तथा लांछित द्वद्धेन[3]।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अस्थायी तथा स्थायी आधारभूत सामग्री व मसि तथा वर्णक आदि माध्यम भूत सामग्री, लेखक, शिल्पी तथा मुद्रांकन अधिकारी सभी मिलकर अभिलेखों को एक मूर्तरूप प्रदान करते थे।

अभिलेखों मे प्राप्त त्रुटियाँ :-

प्रत्येक कार्य में मानव स्वभाव कतिपय त्रुटियो की आशंका सदैव ही बनी रहती हैं। अभिलेखों में लेखन कार्य करते समय लेखकों द्वारा कतिपय त्रुटियां हो गयी है। लिपिकल पलाधेन वा[4] कहकर सम्राट अशोक के चौदहवें लेख में त्रुटियों के होने की संभावना व्यक्त की गयी है। प्रायः लेखकगण कई बड़ी त्रुटियां कर देते थे यथा "विशाखवर्मन के कोरोषण्ड शासनत्र"[5] में प्राप्त त्रुटि दृष्टव्य है -

(स) त्वत् ु हेमं ु

अत्र च व्यासगीतौ द्वौ श्लौकौ दिवस 20 बहुभिर्ब (वं) सुधा इत्यादि।

यहां पर श्लोक की पंक्ति में क्रम सम्बन्धी" तुटियाँ दृष्टिगोचर होती है। "बहुर्भिवसुधा" को अत्र च व्यासगीतौ तथा दिवस 20 को सत्वत् ु हेमं ु के पश्चात् होना चाहिए। इसके अन्य अनेक अभिलेखों के लेखन में लिपिकारों या लेखको द्वारा प्रमादवश अनेकानेक त्रुटियां या लेखकों यथा- विराम चिन्हों का अनुचित

---

1. शुक्रनीति 2/359

2. सिलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स भाग-1 हुल्श पृष्ठ-49

3. एपिग्राफिया इण्डिका भाग-11 पृष्ठ-287।

4- कार्पस इन्सक्रिप्शनम इन्डिकैरम भाग-1 हुल्श (पृष्ठ - 49)

5- एपिग्राफिया इन्डिका भाग-21 पृष्ठ 23-25

प्रयोग, तिथियों तथा संवत् का अनुचित स्थान पर अंकन तथा प्रमादवश किसी शब्द का छूट जाना आदि।

1- विराम चिन्हों का अनुचित स्थान पर प्रयोग :-

उत्कीर्ण लेखों में हमें प्रायः विरामचिन्हों के प्रयोग में अनियमितताएं देखने को मिलती है। लेखों में ऐसे दृष्टान्त बहुशः प्राप्त हो जाते हैं जिनमें वाक्य की पूर्णता या अपूर्णता का विचार किए बिना विराम चिन्हों का प्रयोग किया गया-

श्री राजेन्द्र वर्मा ! वोखरं - भोग- सम्बद्ध - जिज्जिक

ग्रामे। सर्वसमवेतान्कुटुम्बिनः समाज्ञापयत्यस्त्यंग्रामो.....।

उपर्युक्त दृष्टान्त में वाक्य की समाप्ति के बिना भी पूर्ण विराम चिन्हों का प्रयोग वैयाकरणिक दृष्टि से आपत्तिजनक माना है। इसी प्रकार अनेक दृष्टान्तों की प्राप्ति भी हमें होती है जिनमे इस प्रकार की त्रुटियां दृष्टिगोचर होती हैं।

2- तिथ्यांकन सम्बन्धी त्रुटि :-

उत्कीर्ण लेखों में तिथ्यांकन में भी त्रुटियां हुई है। यथा पूर्वोक्त (स) हेमं,.........."[1] इस श्लोक में परम्परा का निर्वनह न करते हुए तिथ्यांकन प्रशंसागर्भ श्लोक के पहले किया गया है जबकि नियमानुसार श्लोक के पहले किया गया है जबकि नियमानुसार प्रशंसागर्भ श्लोक के पश्चात् होना चाहिए था। तिथियां शासन पत्र के उपसंहार की सूचना प्रदान करती है।

इसके अतिरिक्त अतिरिक्त अभिलेखो में अन्य सामान्य त्रुटियां भी दृष्टिगोचर हुई हैं।

जिन्हें समय - समय पर विद्वानों ने शुद्ध करने का प्रयत्न किया है।

5- शिलालेखों हेतु उपयुक्त स्थल :-

शिलालेखों को प्रायः ऐसे स्थानों परा स्थापित किया जाता था जहां सर्व साधारण को सुगम व उपयोगी हो। शिलालेख प्रायः सार्वजनिक हित से सम्पन्न होते थे, अस्तु उन्हें प्रायः सार्वजनिक स्थलों पर ही अधिष्ठापित किया जाता था। शिलालेख प्रायः राजमार्ग चौराहा मन्दिर, व्यापारिक नगर, राज्य सीमा, राजधानी तथा सुगम गुहा में प्रतिष्ठापित किए जाते है।

1- सिलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स भाग-1 पृष्ठ - 459 - 460

शिलालेखों की स्थापाना हेतु उपर्युक्त समस्त स्थल उपयोगी है क्योंकि यह सभी स्थान सर्वसाधारण की पहुंच में हैं तथा अधिकाधिक अवलोकनीय भी हैं।

6- अन्य सम्बन्धित तथ्य :-

सम्वत् उल्लेख - अभिलेखों में चार प्रकार सम्वत् हमें दृष्टिगोचर होते हैं विक्रम संवत् (56वें 57 ई0 पूर्व0) शक् सम्वत् (78ई0पू0) कलचुरि वेति वैकूटक सम्वत् (248-249 ई0) से प्रारम्भ तथा गुप्त सम्वत् (319 ई0 से प्रारम्भ) एतदतिरिक्त 'गांगेय सम्वत्' 'हर्ष सम्वत्' तथा 'भाटिक संवत' का उल्लेख भी कतिपय स्थलों पर प्राप्त होता है।

तिथियों के अंक :-

प्राचीन काल में अभिलेखों में संख्यायें प्रायः अपने स्थानीय मान के साथ लिखी जाती थी यथा -

" सं0 100 87 8 पौष

दि0 20 4 "[1]

इसका अर्थ है सम्वत् - 188 पौष मास

दिवस 24

अंक प्रणाली :-

शब्दात्मक अंकों का प्रयोग भारतीय ज्योतिष व छन्दात्मक सम्बन्धी ग्रंथों में प्रायः दृष्टिगोचर होता है। यथा वसर छंद भंग आदि दोषों के निवारण हेतु मात्राओं का गणों के स्थान पर सख्या पर्याय शब्द भी प्रयोग में लाये जाते थे।[2]

1- ख, आकाश, रन्ध्र - 0

2- आदि शशि, भूमि इत्यादि - 1

3- यम आश्विन लोचन पक्ष बाहु-2

4- राम, गुण, लोक, काल, अग्नि आदि - 3

5- वेद, वर्ण, आश्रम, दिशा आदि - 4

6- बाण, प्राण, पाण्डव, महाभूत आदि - 5

1- सिलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स भाग-1 पृष्ठ - 315

2- विश्व के प्राचीन संस्कृत अभिलेख पृष्ठ - 68 पर उदाहरित।

7- रस, ऋतु, दर्शन कारक आदि - 6

8- नग, ऋषि, अश्व स्वर आदि - 7

9- वसु, अहि, गज, सिद्धि, आदि - 8

10- अंक, निधि, ग्रह आदि - 9

11- दिक् अंगुलि ककुभ आदि - 10

आर्य भट्ट जैसे विद्वान ने भी सैकड़ों योजन की दूरी को बताने हेतु अंको की अपेक्षा अक्षरों का प्रयोग किया है[1]

क = 1, ख = 2, ग = 3,

घ = 4 ङ = 5

इं = 100, उ = 10.000 ए = दस अरब

अर्थात - ङ + इ = 5 100 अ = 500

उत्कीर्ण लेखों में भी कतिपय स्थलों पर भी इस प्रणली का प्रयोग किया गया है

यथा -

"पिण्डीभूते शब्दकाश - वसुजलधि - शरै - वासरै।[2]

यहां वसु (9) जलधि (4) तथा शर (5) का द्योतक है।

इस प्रकार अभिलेखों में प्रयुक्त शब्द तथ अंक का अपना पृथक वैशिष्ट्य है जो सामान्य साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता है।

1- विश्व के प्राचीन संस्कृत अभिलेख पृष्ठ - 68 पर उदाहरित।

2- ईशावर्मन का Vat Chakret Temple लेख, कम्बुज (मजूमदार) इ.का. पृष्ठ-30-31